REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2018

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कहानियों में स्वाधीन चेतना: मुक्ति की छटपटाहट

सुनील कुमार राय
सीनियर रिसर्च फ़ेलो हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना :

निराला की स्वाधीन चेतना वैसे तो उनके समग्र साहित्य में मिलती है, लेकिन उनके गद्य में यह ज्यादा मुखर रूप में हैं संपूर्ण कथा सहित्य का सृजन ही उन्होंने भारतीय समाज में मुक्ति की आकांक्षा अर्थात स्वाधीन चेतना लाने के उद्देश्य से किया था। यहां अगर सिर्फ उनकी कहानियों की बात करें तो कई बार ऐसा लगता है कि स्वाधीन चेतना या मुक्ति की आकांक्षा और निराला की कहानियां एकदूसरे के पूरक है।

यह सर्व विदित है कि निराला ने अपने रचना कर्म की शुरूआत काव्य से किया था। और पहले कहानी संग्रह के प्रकाश में आने से पहले वे एक कवि के रूप में यश बटोर चुकेथे। फिर भी उन्होंने कथा-साहित्य के क्षेत्र में कदम बढ़ाया यहां यह बात ध्यातव्य है कि जब कोई रचनाकार काव्य और संगीत से गद्य की ओर अग्रसर होता है तो, वह पहले से अधिक तार्किक और वैविध्य से परिपूर्ण होता है। यही तार्किकता व विविधिता उन्हें स्वाधीन चेतना से जोड़ती है। और उनके अन्दर स्वाधीनता को भाव बोध उत्पन्न करती है।

निराला ने गद्यकार की भूमिका को एक गंभीर चुनौती के रूप में स्वीकार किया। गद्यकार होना उनके लिए केवल विधा बदलने भर की बात नहीं थी। उन्होंने कविता की मुक्ति का जो सवाल परिमल की भूमिका में उठाया था, इससे उसका भी संबंध है। निराला ने कथा साहित्य को कविता की मुक्ति के लिए आवश्यक माना।

ऐसा लगता है कि इसी संदर्भ को देखकर राजेन्द्र कुमार ये अनुमान लगाते है कि ‘‘निराला के लिए गद्य की कथा विद्या में उतरना, साहित्य के मैदान में बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के लिए सिर उठाने की आवश्यकता को पूरा करने का ही हिस्सा है।’’[1]

निराला 1924 के ‘मतवाला’ में ‘स्वाधीनता’ शीर्षक से कविताएं लिख रहे थे।30 अगस्तर 1924 के मतवाला में छपी कविता ‘स्वाधीनता-2’ की अंतिम पंक्तियां हैं

‘‘समझा मै
भय ही व्यवस्था की जनक है
भय ही व्यवस्था की जनक है
निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
करके दिखाना है
‘स्वाधीन’ का ही
एक और अर्थ निर्भय है।’’[2]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

उपर्युक्त पंक्तियां बड़े ही सहज रूप में‘स्वाधीन’ का एक अर्थ तो बताती है, लेकिन कविता कम, गद्य ज्यादा प्रतीतहोती है। यहाँ यह कहा

जा सकता है कि निराला जिन बातों को कहना चाह रहे थे, वे कविता में संभव नहीं था। यही कारण है कि, उन्हें इस मुक्ति संग्राम का जोश्शोर से जन-जन में चेतना जगाने के लिए गद्य की ओर विमुख होना पड़ा और कथा साहित्य में आने के बादवे 'बुधूआ' और 'महंगू' जैसे जीवन्त पात्रों को रचते है, जो अपने समय एवं समाज की मांग पर लोगों को 'स्वाधीनता' प्राप्ति केलिए संघर्ष करने की मांग करते है। निराला जब इन पात्रों द्वारा यह संवाद करा रहे होते है, तब वे निश्चय ही इस सारी व्यवस्था को बदल डालने के हिमायती है-

''सूराज क्या है?'' बुधूआ ने महंगू से पूछा।
''किसानो का राज'' गंभीर होकर मंहगू ने कहा।'[3]

मंहगू की यह गंभीरतापूर्ण किसानी के राज को सुराज बताना उस समय की'स्वाधीनता' की आकांक्षा के सारे परिदृश्य को दिखाता है। वैसे तो भारतीय समाज में स्वाधीनता की कामना नवजागरण काल से ही आरंभ हो जाती है, किन्तु छायावाद के आते-आते यह आकंक्षा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुच जाती है। इस सन्दर्भ में शंभुनाथ का मानना है कि ''नवजागरण पुरानी जड़ मान्यताओं के विखंडन का अनोखा युग था, जब हर तरफ तर्क और स्वतंत्रता का बोल बाला था। नवजागरण और गद्य के बीच गहरा संबंध रहा है, क्योंकि तर्क और स्वतंत्रता के तीव्र अनुभव के लिए गद्य से उपयुक्त माध्यम कोई नहीं है। जिस समाज में बंधी धारणाएं जितनी कठोर है,उस समाज में गद्य की जरूरत उतनी अधिक होती है। भारतीय नवजागरण के संदर्भ में यह गलतधारणा है कि उसमें तर्क और स्वाधीनता की एक ही दिशा थी। उस काल में यथार्थ के जितने कोणों से स्वाधीनता को लक्षित किया गया, उतनी अवधारणाएं सक्रिय थीं और वे निस्सन्देह अपनी चैहदिया भी बनाने लगी थीं।''[4]और इन्हीं बंधी धारणाओं को कठोर जड़ को उखाड़ फेकने के लिए निराला कोभी कथा साहित्य की जरूरत आन पड़ी। वे उपन्यास और कहानियों का लेखन आरंभ किये और इन्हीं कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से देश वासियों में स्वाधीन चेतना को अपने प्रखर रूप में बढ़ाने का कार्य किया।

निराला के विपुल साहित्य का अधिकांश हिस्सा 'स्वाधीनता संघर्ष' के काल से जुड़ा हुआ है। ऐसे में स्वाधीनता विषयक चिंतन और उनके स्वप्न निराला यहां मिलना स्वाभाविक ही था। निराला का हमेशा यह मानना था कि-'दूसरों को अपनों आंखों से देखें, अपने को दूसरों की आंखों से ही।'[5]यहां इस वक्तव्य से यह प्रतीतहोता है कि निजी दृष्टि और मत का विकास हर क्षेत्र में निराला का काव्य रहा है। अपने सपनों की स्वतंत्रता या कि स्वाधीनता का जो मॉडल निराला गढ़ रहे थे, वह पूर्ण स्वतंत्रता का मॉडल था। वह एक आयामी नहीं था। वे उस स्वतंत्रता के समर्थक नहीं थे, जो दूसरों की स्वतंत्रता छीनती है। उनके यहां इसकीव्याप्ति 'स्वतत्रता' से मुक्ति तक फैली हुई है। उनके समूचे चिंतन में स्वाधीनता एक आवश्यक और अनिवार्य अंतर्नाद की तरह गूँजती मिलती है। उनके स्वतंत्रता विषयक चिंतन पर मुक्ति ज्यादा प्रभावी है। उन्होंने सुधा के 1930 ई. के एक अंक मे लिखा भी था कि- ''यदि एक शब्द में स्वाधीनता की परिभाषा की जाय तो वह ज्ञान ही होगा।''[6]इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कुछ लोगों या कुछ क्षेत्रों की स्वाधीनता निराला की स्वाधीनता नहीं हो सकती थी। वे व्यक्तिगत मुक्ति की बात करते हुए सामूहिक मुक्ति का सपना संजो रहे थे। यही सही मायने में निराला की स्वाधीन चेतना थी।

निराला की स्वाधीन चेतना सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था से छुटकारा पाने की ही नहीं है, अपितु वह समाज को हर बंधन से मुक्ति की आकंक्षी है। उनकी पौराणिक कर्मबंधन से मुक्ति की वकालत को भी एक प्रकार की स्वाधीन चेतना के रूप में ही देखना चहिए। इसे और स्पष्ट करने केलिए 'श्यामा' कहानी को देखा जा सकता है- यहां इस कहानी के पात्र पं. रामप्रसाद अपने पुत्र के नामकरण में पुराणपंथी नामों की महिमा को छोड़कर पुत्र का नाम रखते है- 'विवाह के साल भर में उत्पन्न हुए लड़के का नाम बंकिमचन्द्र रखा। पर बड़ा होकर, गांव जाकर गांव वालों के स्वाधीन उच्चारण में, एक ही रोज में बँकिम बाँके बन गया।'[7]

कुँवरपाल सिंह का मानना है कि-''उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण और बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय आंदोलन में मुक्ति का अर्थ केवल राजनीतिक मुक्ति नहीं है। यहांमुक्ति का अर्थ बहुत व्यापक है। उन्नीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक एवं सामाजिक नवजागरा की अर्थ मुक्ति हैं सामंती संस्कृति के स्थान पर एक जनतांत्रिक संस्कृति का निर्माण हमारे नवजागरणवादियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। वे राजनीतिक समानता की बात नहीं करते बल्कि सामाजिक समानता का लक्ष्य उनके लिए प्रमुख रहा है। भारतेन्दु ने1871 ई. में घोषणा की थी- ''नर नारी ही समान सब''- ये मुक्ति का पहला सोपान है। समानता का यह स्वप्न अभी अधूरा है। धीरे-धीरे मुक्ति का अर्थ व्यापक होता गया। सही तरह की धार्मिक संकीर्णता, पाखण्ड, वर्ण और जाति व्यवस्था, उॅच-नीच, दलितों और महिलाओं की दयनीय दशा आदि प्रश्न मुक्ति से जुड़ते गये।'[8]

निराला की अगर कहानियों को देखा जाये तो वह इनके माध्यम से इन्हीं प्रश्नों को उठाते है। उन्होंने भी देवी, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी एवं श्यामा आदि कहानियों में इन पाखण्डों, कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं परांपरा के नाम पर संकीर्णता और जड़ता फैलाने वाले सभी कारकों का मुखर विरोध किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी एवं अछूत माने जाने वाले पात्रों को उनके मानवीय अधिकारों के लिए जाग्रत किया है। इन कहानियों में उन्होंने अपनी जातीय श्रेष्ठता के दंभ पर व्यंग्य किया है। उनका मानना था कि समाज की मुक्ति में यह ब्राम्हणवादी संस्कृति बहुत बड़ी बाधा है, क्योंकि ये अपने पाखंड एवं भेदभाव के व्यवहार को छोड़ ही नहीं सकते। वे मुक्ति के संग्राम में श्रमिको, कारीगरों एवं किसानों को सबसे आगे देख रहे थे। वहीं कुलीन माने जाने वाले लोगों को देश की छाती पर भार मानते थे। उनका मानना था कि ये न तो राष्ट्रीय मुक्ति में कोई सहयोग दे सकते है न ही समाज को आगे ले जाने में किसी भूमिका निर्वहन ही कर सकते हैं।

'स्वाधीनता' निराला के यहां बहुत व्यापक अर्थ लिए हुए है। उनकी स्वाधीन चेतना का निहितार्थ क्या है और ये उनकी कहानियों में किस प्रकार व्यक्त हुए है। इसके लिए श्यामा, देवी एवं चतुरी चमार कहानी को उदाहरण के तौर पर रख सकतेहै। किस प्रकार बंकिम उस पूरे के पूरे ब्राह्मणवादी समाज से मुक्त होकर अपनी स्वाधीन चेतना जाताता हैं, तो पगली समझी जाने वाली स्त्री उन गोरे सैनिकों के परेड को देखकर हँसते हुए अपने बच्चे के अंदर एक प्रकार की स्वाधीन चेतना भरने का प्रयत्न कर रही है। उनकी स्वाधीनता का फलक बहुत बड़ा है।

परमानंद श्रीवास्तव भी इसे मानते है- ''यदि निराला छायावाद में रहते हुए भी छायावाद का अतिक्रमण करने वाले कवि हैं जो कि वे असंदिग्ध रूप से है, तो देखना चाहिए कि उनकी स्वाधीन चेतना का या चिंता का फलक कितना बड़ा है। 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां' निबंध में निराला के इस कथन के निहितार्थ कहीं अधिक व्यापक हैं- ''रूढ़ियाँ कभी धर्म नहीं होती, वे एक-एक समय की बनी हुई सामाजिक श्रृंखलायें हैं। वे पहले की श्रृखलाएं जिनसे समाज में सुथरापन था, मर्यादी थी- अब जंजीरे हो गयी है। अब इनकी विल्कुल आवश्यकता नहीं। अब उन्हें तोड़कर फेंक देना चाहिए।'' कहना न होगा कि निराला के यहां तोड़ने की प्रक्रिया में एक मूल्यबोध निहित है। अराजक दिखने वाली तोड़फोड़ में भी सार्थक बदलाव की रचनात्मक आकांक्षा सक्रिय है।[9]

यहां निराला के जिस निबंध के बरक्स परमानंद श्रीवास्तव उनकी स्वाधीन चेतना के फलक को बड़ा करार देते है वह बिल्कुल सटीक नज़र आता है। कारण ये है कि इस निबंध के माध्यम से निराला जी सदियों से चली आ रही इन रूढ़ियों पर कठोर प्रहार करते है। निश्चित तौर पर उस दौर में इस तरह स्पष्टतया ब्राह्मणवादी संस्कारों की इतनी भर्त्सना करना और उनसे विमुख हो जाना एक बड़ी बात है।

इससे ये स्पष्ट हो जाता है कि निराला की स्वाधीन चेतना में एक तरह के प्रश्नों का निर्माण होता है। इसको 'देवी' कहानी के निम्न प्रसंग से और स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। इस कहानी में एक जगह निराला को पगली भिखारिन बच्चे में भारत का बिंब दिखाई देता है। और साथ ही साथ वह महावीर की बराबरी भी पातात है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा ने सही ही लिखा है कि-

''एक महाशक्ति वह है, जो राम के मुख में लीन हो जाती है, दूसरी महाशक्ति वह है, जो पगली के रूप में प्रत्यक्ष है। महाशक्ति प्रत्यक्ष होती है। पगली के जीवन संघर्ष में, उसके अटूट धैर्य, उसकी अपराजेय वीरता में यह वीरता साहित्य में स्वकृत नहीं।''[10] रामविलास शर्मा के उपर्युक्त उद्धरण को अगर देखें, तो इससे सहमत और असहमत होने के पर्याप्त कारण है। यहां उनका मानना है कि- इस प्रकार का काल्पनिक पात्र सिर्फ साहित्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

निराला अपनी कहानियों में अत्यधिक क्रान्तिकारी एवं विद्रोही के रूप में दिखाई देते है। उनकी कहानियों में बंगाल के स्वदेशी आंदोलन से लेकर पूरे राष्ट्रीय और क्रांतिकारी आंदोलन की झलक मिलती है। वे देशी-विदेशी हर प्रकार के शोषण के विरोधी है। विदेशी साम्राज्यवाद के साथ भारतीय सामंत और जमींदार, सरकारी कर्मचारी, किसानों और मजदूरों के लिए सबसे बड़ी बाधा बने हुए है। निराला इन्हीं मेहनतकश किसानों व मजदूरों की मुखालफ़त करते है। अर्थात इन सामंती बाधाओं एवं बंधनों से मुक्ति के लिए उन्हें आगे बढ़कर लड़ने की वकालत करते हे।

प्रायः निराला के समग्र रचनाकर्म को उनकी विद्रोही एवं क्रांतिकारी चेतना का परिणाम माना जाता रहा है। लेकिन ध्यान देने की बात है कि उनकी यह विद्रोहशीलता आखिर किन कारणों से जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे बढ़ता जाता है। अगर ये कहं कि पराधीनता और बंधनों ने उन्हे मुक्ति प्राप्ति के लिए कुछ इस तरह का बना दिया तो संभवतः कुछ गलत न होगा। निराला हमेशा समाज के संवेदनशील मुद्दों पर आंख गड़ाये रहते थे वे संवदनाओं के परिवर्तन को भी भांप लेते थे। यही कारण है कि उनकी कहानियों के बहुतायत पात्र समाज के पराधीन और वंचित लोग है। निराला इन्हीं पराधीन लोगों की मुक्ति के आकांक्षी थे। इसके लिए वे इनके अंदर स्वाधीन चेतना को जगाने का काम करतेहै। अकारण नहीं है कि निराला की स्वाधीनता की चिंता सिर्फ राजनीतिक परिधि में नही है बल्कि वे उसी प्रकार की स्वाधीनता के हर क्षेत्र में आकांक्षी है। वे समग्रता में स्वाधीनता को पाना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता की अवधारणा वस्तुतः व्यक्ति की उस

स्तर तक जागरूक और जिम्मेदार बनाने की है, जो स्वयं तो मुक्त हो ही दूसरों को भी मुक्त करा सके। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें व्यक्ति ही निर्धारित करे कि उसे क्या करना है। वही नियम बनाये, नियम उसे न बनायें।

निराला की एक कहानी है -'दो दाने'। अपेक्षाकृत कम चर्चित कहानी है। लेकिन स्वाधीन चेतना की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी है। इस काहनी में निराला अपनी स्वाधीनता की समग्र लड़ाई को लड़ने के बाद का निष्कर्ष देते नजर आते है।1946 में जब निराला 'दो दाने' कहानी लिख रहे थे, तब 1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन' विफल हो चुका था। इस विफलता के कारणों की पड़ताल वे 'दो दाने' में करते हुए नज़र आते है। यहां अगर हम उस समय की स्थिति को देखे, तो इतिहासकार अयोध्या सिंह कहते है - 'स्मरणीय है कि यही वह समय था जब कि सर्वोच्च राष्ट्रीय नेता सुभाष बोस भारत छोड़कर जा चुके थे और जापान शासित क्षेत्रों में रह रहे भारतीयोंको लेकर इंडियन नेशनल आर्मी (आईएनए) के निर्माण में लगे थे ताकि जापान की मदद से भारत को आजाद करा सके । एक के बाद एक पराजय सामना कर रही ब्रिटिश सेना के प्रति जनता की नफरत बढ़ती जा रही थी और इसके साथ भारत में इस खबर के फैलनेसे कि सुभाष बोस के नेत्त्व वाली आईएनए भारत में ब्रिटिश शासकों के खिलाफ़ आक्रमण करने की तैयारी में है, जनता की राष्ट्रीय भावनां काफी प्रबल हुई। जनता को ऐसा महसूस हुआ कि अवसर आ गया है, जब ब्रिटिश शासन से उन्हें मुक्ति मिल सकती है।'[11]इन्हीं सभी परिस्थितियों ने भारतीय मुक्ति-संग्राम मेंएक बड़ी लड़ाई की चेतना जगायी। दुर्भाग्यवश यह आंदोलन असफल रहा, लेकिन इसने भविष्य की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए राह सुगम कर दी। अब भारतीय जनता को ज्यादा दिनों तक पराधीन नहीं रखा जा सकता था। ये भी इस आंदोलन की एक प्रकार की उपलब्धि।

अगर 1942 के स्वाधीनता आंदोलन के कारणों की पड़ताल करे, तो हमें अलग-अलग गई कारण मिल जायेगे। जिनमें एक बड़ा कारण दो विश्व-युद्ध भी थे, जिनकी वजह से एक तरफ़ तो गैर खाद्यान्नों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला, वहीं दूसरी तरफ अकाल की आवृत्ति भी बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप सामान्य व्यक्ति की क्रय-शक्ति लगभग समाप्त हो गयी, वहीं कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की क्रय-शक्ति में बेतहाशा वृद्धि हुई । उस समय तक रानजीतिक की स्थिति ऐसी हो गई थी कि -'राजनीतिक रूप में भारतीयों में स्वाधीनता शब्द कोई ज्यादा आकर्षण पैदा करने वाला न था।' यह बात साफ हो रही थी कि स्वाधीनता आंदोलन के बहाने कुछ लोग आपस में, जाते हुए अंग्रेजी की जगह लेने की लड़ाई लड़ रहे थे। आदांलन की पवित्रता नष्ट हो चुकी थी। इस आंदोलन की प्रमुख एवं अग्रणी संस्था कांग्रेस भी विवादों के घेरे में थी। रहमत अली द्वारा स्थापित पाकिस्तानी राष्ट्रीय आंदोलन को बल दिया जा रहा था। साम्यवादियों द्वारा अंग्रेजों की पक्षधारता ने वैसी ही स्वाधीनता को अति आजाद हिंद फौज के अधिकारियों कर्नल शहनबाज खां, कैप्टन ढिल्लों व लेफ्टिनेंट सहगल पर देश-द्रोह का मुकदमा चलाया और अभियोजन के प्रति तात्कालीन महानायकों का रवैया ठंडा रहा तो स्वाधीनता आंदोलन के ताबूत में अंतिम कील ठुक गयी।आने वाले दिनों में स्वाधीनता के नाम पर क्या होने वाला है- स्पष्ट हो गया। निराला सब देख रहे थे।''[12]

यहां गणेश गंभीर जब ये कह रहे हैं कि निराला सब देख रहे थे, तब निश्चित तौर पर इससे उनका तात्पर्य इतिहास के उस कालचक्र की राजनीतिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति से है, जिसमें एक तरफ समग्र भारतीय जनता ब्रिटिश उपनिवेश की पराधीनता से सवाधीन होने के लिए छटपटा रही थी। वहीं दूसरी तरफ कुछ दलाल टाईप के लोग किस प्रकार इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपने व्यापार के माध्यम से समूचे मध्यवर्ग को लूटने का प्रयत्न कर रहे थे। इन्हीं सभी बातों को देखकर निराला 'दो दाने' कहानी का सृजन करते है।

'दो दाने' कहानी की शुरूवात कुछ इसतरह से होती - 'तुफान और बाढ़ के दिन बीत चुके है।... हरा-भरा बंगाल बाहर से वैसा ही मगर भीतर से जला हुआ है।'[13]इसमें निराला ने यह दिखाना चाहा है कि किस प्रकार से बाहर से परिवर्तित दिखायी देने वाला भारतीय समाज भीतर से परिवर्तित नहीं हुआ है। वे इस कहानी के माध्यम से स्वाधीनताके राजनीतिक निहितार्थो पर प्रश्न उठाया है। इसी प्रकार निराला ने राजनीतिक स्वाधीनता के छद्म रूप को अपनी एक अन्य कहानी 'कला की रूपरेखा' में दिखाया है। इस कहानी में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में जाने वाले एक स्वंसेवक की दारूण स्थिति का वर्णन निराला ने दिखाया है। वे स्वयं सेवक की ओढ़ने के लिए चादर और पहनने के लिए चप्पल की भीख मांगते दिखाकर कांग्रेस के नियम पर चोट करते है। वह स्वंयसेवक जो ठण्ड से कांप रहा है और जिसके पास लखनऊ से अपने घर जाने के पैसे तक नहीं है। उससे निराला पूछते है- 'क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी सी मदद नहीं कर सकते? कहता है- यह कांग्रेस का नियम नहीं हैं।'[14]यहां निराला उस स्वयं सेवक के माध्यम से कांग्रेस की स्वाधीनता आंदोलन का सच उजागर करते है।

निराला की कहानियों में सबसे ज्यादा 'मुक्ति' स्त्री-पात्रों की मिलती हैं उनकी अधिकांश कहानियों के केंद्र में स्त्रियाँ है और ये सभी स्त्रियाँ अपना स्वाधीन व्यक्तित्व रखती है। इन कहानियों को देखकर निराला की 'मुक्ति' कविता याद आती है, जब इसमें वे कहते है-

''तोड़ो तोड़ो, तोड़ो कारा

पत्थर की, निकलो फिर
गंगा-जल-धारा।''[15]

तो ऐसा लगता है कि उपर्युक्त कविता की इनपंक्तिों को ही आगे बढ़ाने का कार्य करती है इनकी कहानियां। वे इन पात्रों के माध्यम से यह दिखाते है कि- स्त्री की यह मुक्ति आंशिक न होकर पूर्ण होनी चाहिए। उसे उन सब बंधनों से मुक्त तो होना है जो सहस्त्राब्दियों से पुरूष-समाज ने उस पर लगा रखा है। साथ-साथ उन बंधनों के चिह्नों से भी मुक्त होना है।

इसके लिए अगर 'पदमा और लिली' कहानी को देखे तो इसमें भी समाज की उस जातीय जकड़न से मुक्ति का प्रश्न निराला ने उठाया है। इस काहनी में पद्मा ब्राम्हण है और एक क्षत्रिय लड़के राजने से प्यार करती है। भारतीय समाज इस तरह के संबंधोंको उस समय तक तो कतई नहीं बर्दाश्त कर सकता था। इसलिए पद्मा के पिता उसका विवाह किसी ब्राम्हण लड़के से करने को सोचते है और पद्म से राजेन के संदर्भ में बात कर उस पर संदेह करते हैं तब पद्मा पिताजी के प्रश्नों का उत्तर देती है- 'आप गलती कर रहे हैं, आप मेरा मतलब नहीं समझे, मैंबिन पूछे हुए बतलाकर कमजारे नही बनना चाहती।'' पद्मा जेठ की लू में झुलस रही थी स्थल पद्म-सा लाल चेहरा तमतमा रहा था। आंखों की दो मुक्ताएँ लिए सगर्व चमक रही थी।[16]यहां सगर्व चमक से तात्पर्य स्त्री के उस आत्मविश्वास से है, जो पितृसत्तात्मक परिवार में माता-पिता के सामने इस तरह तनकर खड़ी होती है। यहां निराला भारतीय समाज में एक नई स्वाधीन नारी को जन्म का दिला रहे थे।

कमला कहानी में भी उन्होंने कमला के स्वाधीन जीवन का वर्णन किया है। इस कहानी में कमला का पति, कमला के चरित्र को लेकर उड़ाई गई अफवाहों के चक्कर में आकर कमला को छोड़कर भाग जाता है। बावजूद इसके वह टूटती नहीं है बल्कि अपना स्वतंत्र जीवन जीती है। निराला उसी दौर में स्त्री की आत्मनिर्भर जिंदगी जीने की कल्पना करते है तो यह एक प्रकार से पुरूषवादी समाज की पराधीनता से मुक्ति का ही परिणाम है। इसी प्रकार अपनी एक अन्य कहानी 'कुल की बीबी' में वह एक ऐसी स्त्री पात्र का सृजन करते है। जो अपने समाज की धार्मिक, परंपरावादी आडंबरों एवं पुरूषवादी सोच के विरोध में आक्रामकता सेपेश आतीहै। इस कहानी की मुख्य मात्र 'सुकुल की बीबी' अर्थात कुंवर को सुकुल से प्रेम हो जाता है। लेकिन समस्या यह है कि सुकुल पहले से शादीशुदा है। तत्कालीन समाज में ऐसे शादी पर उस समय के नैतिकता के ठेकेदार राजी नहीं होते। इस पर कुंवर आक्रामक हो जाती है, और कहती हैं ''..........जगन्नाथ जी में कुछ महीने हुए, कलियुग की मूर्ति देखी-कन्धे पर बीबी को बैठाले मियां लड़के की उंगली पकड़े बाप को धतकार रहे है मेरी इच्छा हुई सुकुल कलियुग बनें।.. धतकारने के लिए, कहती थी सामने समझो हिंदुजन रूपी तुम्हारा बाप है।[17]स्त्री का इतना आक्रामक रूप संभव नहीं था। निराला यहां कुवर के माध्यम से तत्कालीन समय के पुरूषों की भीरूता और मूर्खता का मजाक उड़ा रहे थे। इसी संदर्भ में कुंवर आगे कहती है- ''आप बुरा न मानें, मैंने देखा है, मर्दो में एक पैदाइशी नासमझी है, वह खासतौर से खलती है जब औरतों से वे बातचीत करते हे।''[18]ये है निराला की कहानियों में स्त्री का विद्रोही रूप, जो अब अपने अंदर की स्वाधीन चेतना को जगा चुकी है। निराला ने यहां दिखाया है कि कैसे स्त्री स्वतंत्रता की प्राप्त कर रही है। उसका अपना स्वतंत्र स्वर है विश्वास से भरा हुआ अपने आप को पुरूष कतई कम नहीं मानती। बल्कि सदियों से चली आ रही रूढ़ियों को तोड़ने के लिए वे अपने आक्रामक स्वर में यह भी कह देता है- ''मैं स्वयं सुकुल की सहधर्मिणी नही। ......सुकुल स्वयं मेरे सहधर्मी है।'[19]ये है स्त्री की वास्वतिकता स्वाधीनता। उसने सदियों से चली आ रही इस रूढ़िगत मान्यता को तोड़ है कि स्त्री, पुरूष की सहधार्मिणी होती है। ये है निराला की स्त्री स्वाधीनता का निराला स्वर।

वे सिर्फ कविता की मुक्ति की बात नहीं करते वरन सामाजिक जीवन में वयाप्त असमानता, रूढ़ियों और शोषणमूलक सामंती परिवेश से भी मुक्ति की कामना करते है। समानता, प्रेम, बंधुत्व एवं स्वाधीनतामूलक मूल्यों की उदघोषण करते है-

'जानता हूँ एक बस स्वाधीन शब्द।[20]

स्वाधीनता की अपनी इसी मान्यता के चलते निराला ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में'साधारणता' की व्यापक प्रतिष्ठा की। उन्होंने चतुरी चमार, कुल्ली भाट, एवं बिल्लेसुर बकरिहा को चरित्र नायकत्व प्रदान कराते है।

इस प्रकार निराला की कहानियों में स्वाधीन चेतना का जो स्वर मिलता है वह काफी आक्रामक है। वे समग्र स्वाधीनता की बात करते है। उनके यहां स्वाधीनता का मतलब सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्ता से ही स्वाधीन होना नहींहै बल्कि स्त्री का पुरूषों में, समाज के हाशिए पर रहे लोगों की समाज के तथाकथित उच्च वर्ग से, दलित एवं पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों की ब्राह्मणीय समाज से मुक्ति का बहुत बड़ा फलक है। उनके यहां कुल्ली भाट व चतुरी चमार एक तरफ प्रमुख पात्र है तो दूसरी तरफ लिली, श्यामा, कमला, सुकुल की बीबी

जैसी स्त्रियां। ये समाज के केन्द्र मे आते हैं व अब तक की जड़ पराधीनता से मुक्ति पाकर स्वाधीन हो जाते है। स्त्री पुरुषोंकी बराबरी ही नहीं करती, बल्कि कुछेक जगहों पर उनसे एक कदम आगे बढ़ी हुई प्रतीत होती है।

---

[1]आजकल, सं. सीमा ओझा, प[रिष्ट-33

[2]निराला रचनावली भाग-2,पृष्ठ-227

[3]अलका, निराला, पृष्ठ-19

[4]संस्कृति की उत्तर कथा, शम्भूनाथ, पृष्ठ-32

[5]निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृष्ठ-39

[6]निराला रचनावली, भाग-6, पृष्ठ-275

[7]लिली, निराला, पृष्ठ-38

[8]स्वाधीनता जी अवधारणा, सं.राजेन्द्र कुमार, पृष्ठ-117

[9]वही, पृष्ठ-61

[10]निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृष्ठ-163

[11]भारत का स्वाधीनता आंदोलन, ई एम एस नंबूदिरीपाद, पृष्ठ-529

[12]स्वाधीनता की अवधारणा और निराला, पृष्ठ-129

[13]सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ-219

[14]वही, पृष्ठ-185

[15]निराला संचयिता, सं.रमेश चंद्र शाह,पृष्ठ-117

[16]लिली, निराला, पृष्ठ-17

[17]सुकुल की बीवी, निराला, पृष्ठ-27

[18]वही, पृष्ठ-19

[19]वही, पृ. 16

[20]राग-विराग, पृ.-39